इकाई 4 वास्तुशास्त्र के आधारभूत सिद्धान्त (भाग 1)

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 वास्तु के आधारभूत सिद्धान्त

- 4.2.1 वास्तु स्वरूप एवं विभाग
- 4.2.2 भूमि प्रकार विचार
- 4.2.3 देव स्थान विचार
- 4.2.4 दिशा साधन

4.3 वेध विचार

- 4.3.1 द्वार विचार
- 4.3.2 वास्तु में रंग योजना
- 4.3.3 रसोई कक्ष विचार
- 4.3.4 पथ एवं प्रवेशद्वार

4.4 सारांश

4.5 शब्दावली

4.6 उपयोगी पुस्तकें

4.7 बोध प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप:

- वास्तु के आधारभूत सिद्धान्त के बारे में बतायेंगे।
- वास्तु स्वरूप विभाग तथा उसके विविध आयामों को बतायेंगे।
- भूमि प्रकार को बतायेंगे।
- वास्तु की स्थापना नियमानुसार करेंगे।
- दिशा साधन एवं दिशाओं का आनयन पूर्णतया करेंगे।
- वेध के प्रकार एवं इसके स्थितियों को बतायेंगे।
- द्वार विचार करते हुए वास्तु में रंग योजना को भी बतायेंगे।
- रसोई कक्ष वास्तु के अनुसार किधर होना चाहिए इसको भी बतायेंगे।
- द्वार की उंचाई तथा उससे सम्बन्धित बातों को भी बतायेंगे।
- मार्ग एवं प्रवेश द्वार का भी विचार करेंगे।

4.1 प्रस्तावना

मित्रों आप सब भली – भांति जानते है कि हर एक विषय के पीछे उसका कोई न कोई सिद्धान्त अवश्य होता है जिसके अनुसार वह शास्त्र या विषय चलायमान रहता है ठीक इसी प्रकार वास्तु के भी कुछ सिद्धान्त हैं जो बिल्कुल अपने स्थान पर अडिग है मूलरूप से वास्तु शब्द वसु या धरती से उत्पन्न है इसलिए पृथ्वी को मुख्य रूप से वास्तु माना जाता है तथा वह सभी रचनाएं (निर्माण) इत्यादि इस भूभाग पर ही स्थित है इन सभी को वास्तु ही कहते हैं ।अन्य मतानुसार मुख्य रूप से 4 प्रकार के वास्तु माने गये हैं, पहला पृथ्वी, दूसरा मन्दिर, तीसरा वाहन –यान, चौथा आसन है इनमें भी प्रमुख वास्तु पृथ्वी को ही माना गया है। मूलरूप से वह जगह जहां लोग रहते हैं अर्थात वे सभी स्थान जहां मानव निवासादि कार्य करता है, अन्य अर्थों में वस्तुओं के अध्ययन का कार्य भी वास्तु ही कहलाता है अब इन सभी बातों से आप को लगता होगा कि वास्तु का क्षेत्र जब इतना विस्तृत है तो इसका सिद्धान्त भी अत्यन्त सारगर्भित होगा विल्कुल सही बात यही है। परन्तु कुछ मुलभूत सिद्धान्त आपको इस प्रकार समझना चाहिए कि सबसे बड़ी प्रधानता स्थान की है दूसरी प्रधानता कालचक्र अर्थात समय का है जिसमें की आप वास्तु निर्माण कार्य कराने जा रहे है जिसका आशय शुभ मुहूर्त से है, तथा तीसरी प्रधानता सदपात्र व्यक्ति विशेष से है ।क्योंकि व्यक्ति शास्त्र के मर्म को जानेगा तभी तो वह वास्तु के अनुरूप घर का निर्माण कराएगा अत: व्यक्ति को निष्ठावान होना भी आवश्यक है । और भी महत्वपूर्ण बात यह है कि सभी प्रकार के सुखों की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि हमारे परिसरीय वातावरण कैसा है क्योंकि समीपस्थ वातावरण में निहित उर्जा का भी हमारे उपर प्रभाव पड़ता है। इसलिए यह प्रयास करना चाहिए की अच्छे स्थान पर गृह निर्माण करें ताकि हमेशा सकारात्मक उर्जा की प्राप्ति हो, तथा वास्तु का मुख्य सिद्धान्त यही है कि गृह या किसी अन्य प्रकार के निर्माण करते समय इन्हीं विषयों का सामंजस्यता स्थापित किया जाता है जिस पर वास्तु शास्त्र के आधारभूत सिद्धान्त आधारित हैं इससे स्पष्ट होता है कि पृथ्वी से उर्जा का प्रवाह ,भूखण्ड के आकार से उर्जा की प्राप्ति एवं गृह में अच्छे उर्जा की प्राप्ति हो इन सभी तथ्यों के अनुसार ही गृह निर्माण करना चाहिए एवं इसी को वास्तु का आधारभूत सिद्धान्त भी समझना चाहिए ।इस पाठ के अध्ययन के बाद आप वास्तु के विभिन्न नियमों को जानकर सबको बतायेंगे तथा यह पाठ आप को पसन्द आएगा इसी आशय के साथ आप के समक्ष प्रस्तुत है।

4.2 वास्तु के आधारभूत सिद्धान्त

वास्तु शास्त्र के आधारभूत सिद्धान्त की बात करें तो यह मुख्य रूप से पञ्च महाभूतों पर आधारित है, क्योंकि गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है कि कर्म ही प्रधान होता वास्तु शास्त्र भी कर्म पर ही आधारित है तथा कर्म से भाग्य का निर्माण होता है अत: इन पांच आधारभूत सिद्धान्त पृथ्वी (भूमि)-जल –अग्नि –वायु एवं आकाश यह प्रकृति प्रदत्त पांच पदार्थ ही पञ्च महाभूत की कोटि में आते हैं तथा मुख्य रूप से भवन निर्माण इन्हीं के आधारों पर होता है ।चूँकि वास्तु वह विद्या है जिसके अनुसार भवन निर्माण करने से सुख –शान्ति और एश्वर्य की प्राप्ति होती है ।और भी विशेष बात यह है कि जहां तक वास्तु सिद्धांतो की बात करें तो वास्तुशास्त्र का धर्म से भी गहरा है, वास्तु के लक्षणों और स्वरूप को भी जानना आवश्यक है, भूमि परीक्षा और खात परीक्षा का भी विचार करना चाहिए, वास्तु के मुहूर्त भी विना देखे गृह निर्माण नहीं करना चाहिए, द्वार वेध, एवं मार्ग का विचार व्यापारिक प्रतिष्ठान, भवन दोष, शयन

कैसे करें इत्यादि वास्तु शास्त्र के अनुरूप नियमों के अनुसार भवन निर्माण ही वास्तु शास्त्र के आधारभूत सिद्धान्त समझना चाहिए। कुछ वास्तु सिद्धान्तों को आप को इस प्रकार समझना चाहिए –जैसे मुख्यद्वार सम्बन्धित सिद्धान्त ,पूजा घर सम्बन्धित वास्तु का सिद्धान्त, अन्न आदि भण्डार से सम्बन्धित वास्तु के सिद्धान्त, शयनागार सम्बन्धित वास्तु का सिद्धान्त, चूँकि साधारण नियम यह है कि दरवाजे की चौड़ाई से दो गुनी ऊंचाई होनी चहिए वास्तव में यह बहुत ही उत्तम माप का विधान है, परन्तु यहाँ पर यह सावधानी होनी चाहिए कि चौड़ाई चार फिट या कम से कम साढ़े तीन फुट से कम न हो, इससे स्पष्ट होता है कि द्वार का विस्तार घर के अनुसार ही कल्पित है। समरांगण के अनुसार द्वार की ऊंचाई, चौड़ाई के दोगुने से अधिक होना चाहिए। तथा दरवाजों पर किसी न किसी का चित्र के द्वारा उसकी सजावट का भी विधान है, प्राय:प्राचीन भवनों में, विशेष मन्दिरों में यह परम्परा सर्वत्र विद्यमान है।सादा दरवाजा वर्जित है। परन्तु यह भी ध्यान देना चाहिए कि जो भी आकृति अथवा चित्र का निर्माण आप कर रहे है वह एक हाथ से अधिक का नहीं होना चाहिए तथा कुलदेवता, दो प्रतीहारी अर्थात द्वारपाल, शंख तथा पदनिधि, अष्टमंगला, लक्ष्मी ,सवत्सा गौ आदि का चित्र लगाना द्वार पर उत्तम माना गया है।

गृह के आन्तरिक निर्माण का सिद्धान्त – गृह के भीतर किस दिशा में कौन सा कमरा होना चाहिए इस सिद्धान्त को विभिन्न ग्रन्थों में इस प्रकार बताया गया है। पूर्व में स्नान गृह, आग्नेय कोण में भोजनालय। दक्षिण में शयन कक्ष, मिक्सर इत्यादि रखने का स्थान। नैऋत्य में शस्त्रागार, सूतिका घर, वस्त्र रखने का स्थान, गृह सामग्री, शौचालय, बड़े भाई अथवा पिता का कमरा। पश्चिम में भोजन करने का स्थान। वायव्य में रासन स्टोर रूम, वाहन इत्यादि रखने का स्थान, शौचालय आदि। उत्तर में देवगृह, स्टोर, जल रखने वाला स्थान, धन संग्रह का स्थान। ईशान में देव गृह (पूजा गृह), जल रखने का स्थान। पूर्व आग्नेय में मंथन कार्य करने का स्थान। आग्नेय दक्षिण में घृत रखने का स्थान। दक्षिण – नैऋत्य में शौचालय।नैऋत्य –पश्चिम में अध्ययन कक्ष। पश्चिम- वायव्य में रोदन कक्ष।वायव्य –उत्तर में रति गृह। उत्तर –ईशान में औषधि (दवाई) रखने तथा चिकित्सा कक्ष।ईशान –पूर्व में सभी वस्तुओं के संग्रह कक्ष बनाना चाहिए।

तहखाना पूर्व- उत्तर अथवा ईशान कोण की ओर बनाना चाहिए। भारी सामान नैऋत्य दिशा में रखनी चाहिए। पूर्व – उत्तर अथवा ईशान में भारी समान यथा सम्भव नहीं रखना चाहिए। जिस कार्य में अग्नि की आवश्यकता होती है वह कार्य आग्नेय दिशा में करना चाहिए।

दीपक का मुख यदि पूर्व की ओर करके रखा जाय तो आयु की वृद्धि होती है, उत्तर की ओर करके रखा जाय तो धन की प्राप्ति होती है, पश्चिम की ओर करके रखा जाय तो दुःख प्राप्त होता है, और दक्षिण की ओर करके रखा जय तो हानि होती है। वर्तमान समय में दीपक की जगह बल्ब –ट्यूबलाईट आदि समझना चाहिए।

बीच में नीचा तथा चरों ओर ऊँचा आंगन होने से पुत्र का नाश होता है। यदि घर के पश्चिम भाग में दो दरवाजे या दो कमरे हो तो उस घर में रहने से दुःख मिलता है। दुकान -आफिस -फैक्ट्री में मुखिया को पूर्व अथवा उत्तर की ओर मुख करके बैठना चाहिए।दुकान की वायव्य दिशा में रखा गया मॉल (वस्तु)शीघ्र बिकता है।फैक्ट्री में तैयार माल वायव्य दिशा में रखना चाहिए। भारी मशीन आदि पश्चिम दिशा में रखना चाहिए।दुकान का मुख वायव्य दिशा में रखने से विक्री अच्छी होती है ,ईशान दिशा में पति –पत्नी को शयन नहीं करना चाहिए

अन्यथा किसी लम्बी बीमारी में फस सकते हैं । पूजा-पाठ- ध्यान , विद्याध्ययन आदि सभी शुभ कार्य पूर्व अथवा उत्तर की ओर मुख करके ही करना चाहिए ।नृत्यशाला पूर्व –पश्चिम – वायव्य और आग्नेय दिशा में बनानी चाहिए।

घर के नैऋत्य भाग में किरायेदार या अतिथि को नहीं ठहराना चाहिए, अन्यथा वह स्थाई हो सकता है। उन्हें वायव्य में ठहराना ही उचित है। पशुशाला – गौशाला के लिए "वृष "आय शुभ होता है, घुड़साल के लिए ध्वज-वृष-खर आय शुभ होता है। हाथी के निवास में गज और ध्वज आय श्रेष्ठ है, ऊँट के निवास में गज और वृष आय श्रेष्ठ है ।आय निकालने की विधि 6 इकाई में दिया गया है।

भैस –बकरे और भेड़ के रहने का स्थान दक्षिण और आग्नेय के बीच में बनाना शुभप्रद है, गधे और ऊँट स्थान ईशान और पूर्व के बीच में बनाना शुभ है। पूर्व अथवा पश्चिम मुख घोड़ो को बांधने से गृह स्वामी का तेज नष्ट होता है। उत्तर अथवा दक्षिण मुख बांधने से कीर्ति, यश, धन , धान्य की वृद्धि होती है।

वास्तु के आधारभूत सिद्धान्त पर आधारित गृह निर्माण चक्र

सर्वोच्च गृह शिखर छत पिरामिड आकार का श्रेष्ठ होता है

	वायव्य	उत्तर	ईशान
	आयुध स्थान पानी टैंक, भण्डार, शौचालय, हरियाली पार्किंग आदि	स्वागत कक्ष बैठक कक्ष ड्राइंग रूम स्टोर रूम आदि	धर्म स्थान ,पूजा गृह जल कुम्भ , भूमिगत स्थान वेसमेंट आदि
पश्चिम	भोजनस्थान बाल ,अध्ययन सीढि, छत वाटर टैंक	(ब्रह्म स्थान) आकाश खुला खाली स्थान (यहां पर स्तम्भ नहीं होना चाहिए)	स्नान गृह अतिथि गृह अलिन्द पूर्व (बरामदा)
	शयन कक्ष (वरिष्ठ जनों का) भण्डार, गोडाउन, स्टोर रूम छत पर वाटर टैंक	शयन कक्ष (वेड रूम) लाकर	रसोई घर (किचन) प्रकाश गृह (लाईट रूम)
	नैऋत्य	दक्षिण	अग्नि

यह दक्षिण भाग कुछ ऊँचा होना चाहिए

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

4.2.1 वास्तु स्वरुप एवं विभाग

मनुष्य के निवास योग्य भूमि एवं भवन को वास्तु कहते हैं ,और जिस शास्त्र में भूमि एवं भवन में निवास करने वाले लोगों को अत्यधिक सुविधा – सुरक्षा- आचरण- व्यवहार आदि नियमों एवं सिद्धान्तों के बारे में समुचित रूप से बताया गया है वह शास्त्र वास्तु शास्त्र ही है। आवास प्राणी मात्र के लिए अत्यन्त आवश्यक है तथा इसके कुछ आधारभूत सिद्धान्त भी है, यहां पर वास्तु के तीन विभाग समझना चाहिए –

1. आवासीय
2. व्यावसायिक
3. धार्मिक

आवासीय वास्तु मुख्य रूप से पांच प्रकार के होते हैं।

1. घास – फूस से बनी झोपड़ी
2. लकड़ी से बने घर
3. मिट्टी छप्पर या खपड़ा से बने कच्चे घर
4. इट, चुना, लोहा एवं सीमेंट से बने पक्के घर
5. पत्थर से बनी हवेलियाँ –महल आदि आज के युग में पक्के मकान भी दो प्रकार के होते है एक तो मकान व दुसरा फ्लैट इस प्रकार आवासीय वास्तु के भेद इस प्रकार है। पर्णकुटी –लकड़ी के घर –कच्चे घर – ईट से बने पक्के घर –पत्थर से बने पक्के घर, ईट से बने पक्के घर के दो विभग है पहला मकान दूसरा फ्लैट, इसी प्रकार पत्थर से बने पक्के घर के भी तीन भेद है पहला मकान, दूसरा हवेली, तीसरा महल 2.व्यवसायिक वास्तु – व्यवसायिक वास्तु दो प्रकार की होती है – (1) व्यापारिक (2) औद्योगिक व्यापारिक वास्तु तीन प्रकार के होते है (1) दुकान (2)शोरुम (3)आफिस एवं (4) होटल आदि ये चारों एक मंजिल और बहुमंजिल भेद से तीन प्रकार के होते हैं ,पहला घरेलू इकाई ,दूसरा लघुउद्योग, तीसरा भारी उद्योग इस प्रकार व्यवसायिक वास्तु के दो भेदों का विचार किया जाता है जिसमें समय एवं परिस्थितियों के अनुसार बदलाव किया जस सकता है।

4. धार्मिक वास्तु – धार्मिक वास्तु के पांच भेद होते हैं –

1. मन्दिर, 2. मठ, 3. धर्मशाला, 4. जलाशय, 5. धार्मिक संस्थान

धार्मिक वास्तुओं में मन्दिर आदि से तात्पर्य मन्दिर –मस्जिद – गुरुद्वारा – चर्च आदि पूजास्थलों से है। इस विषय में मठ का अर्थ आश्रम, बौध बिहार आदि से है और जलाशय का अर्थ कुवां –बावड़ी –तालाब व धार्मिक सरोवरों से है।

चूँकि देवता और मानव जहां –जहां निवास करते हैं विद्वान लोग उसे वास्तु कहते हैं।वास्तु चार प्रकार की होती है, भूमि –देवालय-प्रसाद - (यान) –शयन इसमें प्रधान वास्तु भूमि ही है क्योंकि शेष सभी वास्तु भूमि से ही उत्पन्न होते हैं। देवालय आदि वास्तु प्रधान भूमि से उत्पन्न होने एवं उस पर आश्रित होने के कारण वास्तु ही है इसी कारण आचार्यो ने इसे भी वास्तु की संज्ञा दी है ।

4.2.2 भूमि प्रकार

भवन निर्माण के लिए प्लाट का चुनाव करते समय विभिन्न दिशाओं और कोणों के ढलान के अनुसार उस भूखण्ड में बने निवासियों का रुझान प्रभावित होता है।इस विषय में वास्तुविद्या में चारों दिशाओं तथा चारों कोणों में भूखण्ड की ऊंचाई – निचाई के अनुसार "गोविथी "आदि आठ वीथीयों की कल्पना करके उसके शुभाशुभ फल का विचार किया जाता है।

जैसे – जो भूमि ईशान कोण में ऊँची और नैऋत्य में नीची हो वह भूतवीथी कहलाती है। जो भूमि अग्निकोण में ऊँची और वायव्य कोण में नीची हो तो वह नागवीथी कही जाती है। जो भूमि वायव्य में ऊँची और अग्नि कोण में नीची हो वह वैश्वानरी कहलाती है तथा जो भूमि नैऋत्य में ऊँची और ईशान कोण में नीची हो वह धनवीथी कहलाती है।इसको इस प्रकार समझना चाहिए – यहां पर वास्तु शास्त्र के अनुसार विभिन्न दिशा और कोणों में ऊँची तथा नीची (ढाल)भूमि का फल इस प्रकार समझना चाहिए – पूर्व में ऊँची भूमि सन्तान की हानि करता है ,दक्षिण में ऊँची भूमि धन दायक होता है, पश्चिम में ऊँची भूमि धन एवं यश की वृद्धि करता है, उत्तर में ऊँची भूमि दरिद्रता प्रदान करता है ,आग्नेय अगर यदि वायव्य व ईशान में ऊँची हो तो शुभ अन्यथा अशुभकर समझना चाहिए। नैऋत्य में ऊँची भूमि भी शुख –शान्ति प्रदान करने वाला होता है, वायव्य- ईशान से ऊँची हो तो शुभ अन्यथा अशुभ समझना चाहिए। ईशान में ऊँची भूमि चिन्ता और धनहानि दायक होती है, मध्यभाग में ऊँची भूमि समवृद्धि एवं एश्वर्य प्रदान करने वाली होती है। तात्पर्य यह है कि जिस भूखण्ड पर घर बनाना हो उसमें नैऋत्यकोण सबसे ऊँचा और ईशान कोण सबसे नीचा होना चाहिए। वायव्य कोण ईशान कोण से ऊँचा तथा आग्नेय कोण वायव्य से ऊँचा होना चाहिए।ऐसे भूखण्ड पर निवास करने से जीवन में प्रगति एवं समृद्धि होती है । आठ वीथीयों का ज्ञान -

क्रम संख्या	वीथीनाम	दिशा जिसमें ऊँची	दिशा जिसमें नीची	फल
1 -	गोवीथी	पश्चिम	पूर्व	शुभ
2 -	जलवीथी	पूर्व	पश्चिम	अशुभ
3 -	यमवीथी	उत्तर	दक्षिण	अशुभ
4 -	गजवीथी	दक्षिण	उत्तर	शुभ
5-	भूतवीथी	ईशानकोण	नैऋत्यकोण	अशुभ
6-	नागवीथी	अग्निकोण	वायव्यकोण	अशुभ
7-	वैश्वानरी	वायव्यकोण	अग्निकोण	शुभ
8 -	धनवीथी	नैऋत्यकोण	ईशानकोण	शुभ

निचाई (ढलान) का फल आप को इस प्रकार समझना चाहिए –

निचाई की दिशा / कोण	फल
पूर्व	सुख, समवृद्धि
दक्षिण	व्याधि, भय
उत्तर	मंगल कारक
पश्चिम	धन हानि, रोग
अग्निकोण	यदि नैऋत्य से नीची हो तो शुभ अन्यथा अशुभ समझना चाहिए।

नैऋत्य	व्यसन, व्याधि
वायव्य	यदि नैऋत्य एवं आग्नेय से नीची हो तो शुभ अन्यथा अशुभ समझना चाहिए।
ईशान	सुख, शान्ति
मध्य	अनिष्टकारी

भूखण्ड की भूमि का विभिन्न दिशाओं और कोणों में ऊंचाई के आधार पर उस भूमि को चार श्रेणियों में वर्गीकरण किया जा सकता है। 1. गजपृष्ठभूमि, 2 . कुर्मपृष्ठभूमि, 3 . दैत्यपृष्ठभूमि, 4. नागपृष्ठभूमि इनका लक्षण इस प्रकार है –

भूमि	ऊंचाई - निचाई दिशा	फल
गजपृष्ठ	दक्षिण पश्चिम ,नैऋत्य एवं वायव्य में ऊँची	धनलाभ, आयु वृद्धि
कूर्मपृष्ठ	मध्य में ऊँची और चारों ओर नीची	उत्साह धन वृद्धि
दैत्यपृष्ठ	पूर्व, ईशान एवं आग्नेय में ऊँची तथा पश्चिम में नीची	धन – पुत्र एवं पशुओं की हानि
नागपृष्ठ	पूर्व –पश्चिम की ओर लम्बी, उत्तर दक्षिण में ऊँची और मध्य में नीची	पत्नी हानि ,पुत्र हानि व शत्रु वृद्धि

इस प्रकार आप को भूमि के प्रकार को जानना चाहिए ।तथा भूमि के आकार रंग एवं शब्द आदि गुणों से युक्त भूमि का चयन करने के बाद बुद्धिमान भूस्वामी को देवपूजा करनी चाहिए जिससे कि वहां की नकारात्मक शक्तियाँ दूर होकर सकारात्मक शक्तियों का संचरण होना नियमित हो जाए।

4.2.3 देव स्थान विचार

सभी देव वास्तु के अनुसार प्रत्येक भूखण्ड में विद्यमान होते हैं, जिसके द्वारा विभिन्न देवी देवतओं की स्थिति भूखण्ड में दर्शायी गयी है जिसके द्वारा प्रत्येक स्थान के महत्व को जाना जा सके। तथा इस प्रकार के वास्तु क्रम पद को विन्यास कहते हैं, आइए अब इसको जानते हैं –

1. सकल- इसमें मात्र एक पद होता है तथा यह यतियों के लिए अनुकूल होता है ,इसमें अग्नि होता है व इसमें कुश विछाया जाता है। इस पर पितृ पूजन, देव पूजन व गुरु पूजन का कार्य सम्पन्न होता है , इसके चारों ओर खिची गयी रेखायें भानु –अर्कि –तोय एवं शशि कहलाती है।

2. पेचकम्- पेचक पद विन्यास में चार पद होते हैं, इसमें पिशाच –भूत –विष –ग्रह एवं राक्षसों की पूजा होती है। विधियों के ज्ञाता विधि पूर्वक इस प्रकार के कार्यों के लिए इस पद विन्यास को बनाते हैं, वह इसमें सभी विधियों का पालन करते हुए निर्मल व शिव को प्रतिष्ठित करते हैं।

3. पीठम् – पीठ संज्ञक पद विन्यास में नौ पद होते हैं। इसके चारों दिशाओं में चारों वेद, ईशान आदि कोणों में क्रमशः जल –अग्नि –आकाश और वायु होते हैं व मध्य में पृथ्वी होती है।

4. महापीठम्- महापीठ पद विन्यास में सोलह पद होते हैं, एवं इसमें पच्चीस देवता होते हैं। इन पदों में ईशान कोण से आरम्भ करके क्रमशः देवता इस प्रकार होते हैं, ईश – जयन्त – आदित्य –भृश – अग्नि –वितथ –यम –भृंगराज –पितृ –सुग्रीव – वरुण –शोष – मारुत – मुख्य –सोम एवं अदिति ब्रह्मा पदों के देवता कहे गये हैं। अन्तर के पदों के देवता आपत्स –आर्य –सावित्र –विवस्वान –इन्द्र –मित्र –रुद्रज – एवं भूधर हैं।केन्द्र में ब्रह्मा स्थित हैं तथा ब्रह्मा को सबका स्वामी कहा गया है।

5. उपपीठादि - उपपीठ वास्तु विन्यास में पूर्वोक्त देवता अपने पदों के अतिरिक्त अपने दोनों पार्श्वों में एक-एक पद की वृद्धि प्राप्त करते हुए स्थित होते हैं स्थापति को चाहिए कि उन देवों के दोनों पार्श्वों में एक-एक पद की वृद्धि तब तक करें जब तक इन्द्रकान्त पद न बन जाय।

जिन वास्तु नियमों में सम संख्या में पद हो, उन्हें चौसठ पद वाले वास्तु के समान एवं विषम संख्या में पद हो तो इक्यासी पद वाले वास्तु के समान देवों की स्थापना करनी चाहिए। सभी वास्तु विन्यासों में मण्डूक संज्ञक वास्तुपद –विन्यास सभी निर्माण कार्यों के लिए उपयुक्त होता है, क्योंकि यह तांत्रिक विधि पर आधारित होता है। उपर्युक्त दोनों पद विन्यासों में वास्तु पद के मध्य में ब्रह्मा आदि देवता स्थापित किए जाते हैं।चौसठ पद वाले मण्डूक पद का निर्माण आप को इस प्रकार करना चाहिए –

ग्राम वास, राज महल, और नगर में चौसठ पद का वास्तु, सर्व जाति के घरों के लिए इक्यासी पद वाला वास्तु, जीर्णोद्वार में उनचास पद का वास्तु, सर्वजाति के प्रसाद और मण्डप के लिए सौ पद का वास्तु, कुवां ,बावड़ी, तालाब और बन में एक सौ छियानबे पद का वास्तु पूजा जाना चाहिए।

चौसठ पद वाले वास्तु का स्वरूप – चौसठ पद के वास्तु में ब्रह्मा चार पद के, अर्यमा आदि चार देव चार चार पद के, मध्य कोण के आपवत्स आदि आठ देव दो दो पद के, उपर के कोण के आठ देव आधे – आधे पद के और शेष देव एक एक पद के हैं।

इक्यासी पद के वास्तु का स्वरूप – इक्यासी पद के वास्तु में नव पद के ब्रह्मा, अर्यमा आदि चारदेव छः छ; पद के मध्यवर्ती कोण के आठ देव दो दो पद के और उपर के बत्तीस देव एक एक पद के होते हैं।

पूर्व

1 ईश	2 पर्यन्य	3 जयन्त	4 इन्द्र	5 सूर्य	6 सत्य	7 भृश	8 आकाश	9 वायु
32 दिति	33 आप	33 आप	37 मरीचि	37 मरीचि	37 मरीचि	34 सावित्र	34 सावित्री	10 पूषा
30 अदिति	43 आपयत्स	43 आपयत्स	45 मरीचि	45 मरीचि	45 मरीचि	39 सविता	39 सविता	12 वितथ
सर्प	पृथ्वीधर	पृथ्वीधर	ब्रह्मा	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विवश्वान	विवश्वान	बृहत्क्षत
29 उत्तर	43 सोम	43 पृथ्वीधर	45 पृथ्वीधर	45 ब्रह्मा	45 ब्रह्मा	39 ब्रह्मा	39 विवश्वान	13 विवश्वान यम

28 भल्लाट	43 पृथ्वीधर	43 पृथ्वीधर	45 ब्रह्मा	45 ब्रह्मा	45 ब्रह्मा	39 विवश्वान	39 विवश्वान	14 गन्धर्व
27 मुख्य	42 रूद्र	42 रूद्र	41 मित्र	41 मित्र	40 मित्र	40 विष्णु	40 विष्णु	15 भृंगराज
26 अठी	36 शेष	36 शेष	41 मित्र	41 मित्र	41 मित्र	35 इन्द्रजय	35 इन्द्रजय	16 मृग
25 रोग	24 पापयक्ष्मा	23 शेष	22 असुर	21 वरुण	20 पुष्पदन्त	19 सुग्रीव	18 दौवारिक	17 पितृ

पश्चिम

॥ चौसठ पद वाला वास्तु चक्र ॥

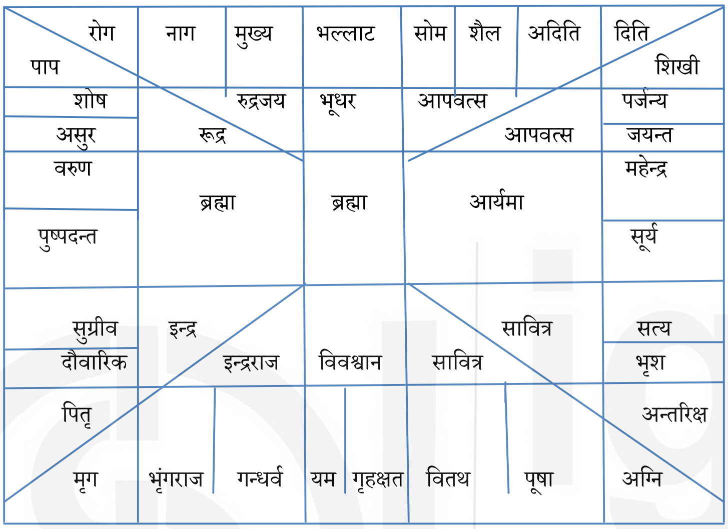

॥ इक्यासी पद वास्तुचक्र ॥

इस प्रकार चक्र बनाकर देवों की स्थापना करके पूजन इत्यादि कर के वास्तु शान्ति कर सकते हैं ,परन्तु मर्म स्थान का ध्यान रखकर निर्माण कार्य करना चाहिए – घर की एक सौ आठ भाग

करके उसमें एक मूर्ति के आकार की वास्तु पुरुष की आकृति की कल्पना करें। इस वास्तु पुरुष का मस्तक, हृदय, नाभि तथा शिखा जहां हो वहां स्तम्भ नहीं रखना चाहिए।

ईशान कोण में वास्तु का मस्तक होता है उसपर ईश देव की स्थापना होती है, दोनों कानों पर क्रम से पर्जन्य और दिति देव को, गले पर आप देव को, दोनों कंधों पर क्रम से जय और अदिति देवों को, दोनों स्तन पर अर्यमा, और भूधर (पृथ्वीधर)देवों की स्थापना होती है। तथा हृदय पर आपवत्स को, दाहिनी भुजा पर इन्द्रादि (इन्द्र ,सूर्य ,सत्य, भृश और आकाश) पांच देवों को स्थापित करना चाहिए। वायीं भुजा पर नाग आदि (नाग, मुख्य, भल्लाट, कुबेर और शैली) देवों की स्थापना होती है। दाहिने हाथ पर सावित्री और सविता देवों को स्थापित करना चाहिए। वाएं हाथ पर रूद्र और रुद्र्दास देवों की स्थापना होती है।जन्घा पर क्रम से मृत्यु और मैत्र देवों की स्थापना होती है। नाभि के पृष्ठ भाग पर ब्रह्म देव को ,गुप्तइन्द्रिय स्थान पर इन्द्र और जय देवों की स्थापना की जाती है। दोनों घुटनों पर अग्नि और रोग देव को दाहिने पैर पर नली पर स्थापित करना चाहिए। पूषादि सात (पूषा ,वितथ, गृहक्षत, यम, गन्धर्व, भृंग और मृग) देवों को वाये पैर की नली पर स्थापित करना चाहिए। नंदी आदि (नंदी ,सुग्रीव, पुष्पदन्त, वरुण, असुर, शेष और आप यक्ष्मा) इन सात देवों को वहीं स्थापित करना चाहिए तथा पैर के तलुए में पितृ देव की स्थापना करनी चाहिए। तथा भवन निर्माण वास्तु के मर्म स्थान को छोड़कर करना चाहिए।

4.2.4 दिशा साधन

दिशाओं का निर्धारण वास्तु निर्माण करने से पूर्व अवश्य करना चाहिए इसका विचार किये बिना निर्मित किये गये वास्तु निर्माण अनपेक्षित परेशानियों का जन्म देता है। मन्दिर –मकान –धर्मशाला –दुकान –कारखाना –ओषधालय –अनाथालय –छात्रावास – वाचनालय –पाठशाला –महाविद्यालय –आश्रम –कार्यालय आदि कोई भी निर्माण कार्य करने से पूर्व दिशाओं का निर्धारण कार्य अवश्य कर लेना चाहिए, तथा दिशाओं के अनुकूल –प्रतिकूल फलों का विचार करके ही निर्माण कार्य की योजना बनाना उपयुक्त होता है दिशाओं की अनुकूलता जहां स्वामी को धन-धान्य –आयु –बल –आरोग्य लाभकारक होती है। वहीं इनकी प्रतिकूलता अर्थ हानि ,पारिवारिक एवं शारीरिक विपत्तियों ,परेशानियों ,कलह, विवाद और विसंवादी भी बनाती है। प्रकृति में दश दिशायें मानी जाती है।

चार प्रमुख दिशाएं - पूर्व –पश्चिम –उत्तर –दक्षिण
चार विदिशाए – ईशान –आग्नेय – नैऋत्य –वायव्य

तथा उर्ध्व अर्थात उपर एवं अधो अर्थात निचे (पाताल की ओर) दिशा निर्धारण की वर्तमान युग में चुम्कीय सुई के द्वारा दिशा निर्धारण किया जाता है, चुम्बकीय सुई एक एसी सुई है जो चिन्हांकित वृताकार डायल पर स्वतन्त्रता पूर्वक घुमती है।यह डायल सीधे ही या पारे पर लगाया जाता है। उत्तर की ओर संकेत करने से वहां पर बने डायल में 360 डिग्री के चिन्हों द्वारा सभी दिशाओं का निर्धारण कर लिया जाता है। चुम्कीय सुई पृथ्वी के चुम्कीय धारा के अनुसार उसके समानान्तर हो जाती है, अत: सदैव वह उत्तर दिशा में ही स्थिर रहती है। दिशा निर्धारण की यह विधि सरल तथास व्यवहारिक है शास्त्रोक्त विधि थोड़ा कठिन प्रतीत होता है उसके बजाय दिशा ज्ञान इस विधि से आसानी से कर सकते हैं।

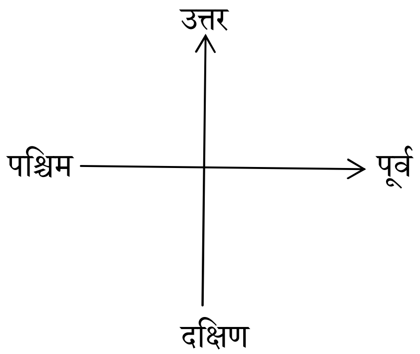

दिशाओं का निर्धारण सूर्योदय दिशा के आधार पर किया जाता है ,सूर्योदय की दिशा पूर्व कहलाती है।सूर्यास्त की दिशा पश्चिम दिशा कहलाती है इसके अतिरिक्त सूर्योदय की दिशा से बायें ओर समकोण पर उत्तर दिशा तथा दायीं ओर समकोण पर दक्षिण दिशा होती है। इसके मध्य में चार विदिशायें होती है।उत्तर एवं पूर्व के मध्य में ईशान विदिशा होती है ,पूर्व एवं दक्षिण के मध्य में आग्नेय विदिशा होती है, दक्षिण एवं पश्चिम के मध्य में नैऋत्य विदिशा होती है।पश्चिम एवं उत्तर के मध्य में वायव्य विदिशा होती है। इन आठ दिशाओं का मानव जीवन पर इस प्रकार प्रभाव पड़ता है –

1. पूर्व. यह पितृ दिशा है, मकान का पूर्वी भाग जोकि खुला होना चाहिए इस भाग को ढक देने पर भवन स्वामी रहित हो जाता है अर्थात अवसान हो जाता है इसका आशय यह है कि परिवार का पुरुष प्रधान सदस्य का अवसान हो जाता है।
2. आग्नेय. स्वास्थ्य प्रदाता है।
3. दक्षिण. समवृद्धि –सुख तथा संतोषदायक है।(इसीलिए अन्य दिशाओं की तुलना में सन्तुलन बनाने के लिए इस दिशा को भारी रखना चाहिए)
4. नैऋत्य. व्यवहार, मनोभावना तथा अकाल मृत्यु के लिए उत्तरदायी है।
5. पश्चिम. प्रगति, उत्कर्ष तथा प्रतिष्ठा प्रदाता है।
6. वायव्य. अन्य लोगों से सम्बन्धों का नियमन करता है जो हार्दिकता एवं आतिथ्य से निर्मित है।
7. उत्तर. यह दिशा माता की दिशा है यह स्थान रिक्त न रखे जाने पर मकान निर्जन हो जाता है क्योंकि परिवार की महिला सदस्यों की मृत्यु हो जाने से परिवार बिना स्त्रियों का हो जाता है
8. ईशान. पुरुष वंश की निरन्तरता को सुनिश्चित करता है। मकान में इस दिशा को काट देने से पुरुष नहीं होते हैं।

4.3 वेध विचार

सात प्रकार के वेध बताये गये हैं परन्तु सर्व प्रथम सभी प्रकार से भूमि के दोषों को शुद्ध करके घर की मुख्यशाला से कार्य आरम्भ किया जाना चाहिए। इसके बाद दुसरे स्थान का निर्माण कार्य किया जाता है किसी स्थान में वेध आदि दोष न आये इस प्रकार से कार्य करें, वेध सर्वत वर्जनीय है।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

तल वेध, कोण वेध, तालू वेध, कपाल वेध, स्तम्भ वेध तुला वेध और द्वार वेध ये सात प्रकार के वेध हैं।

घर की भूमि सम –विषम, उबड़ –खाबड़ हो, द्वार के सामने कुम्भी हो, दूसरों के घर का पानी की नाली या रास्ता हो तो तल वेध समझें और घर के कोण ठीक न हों तो इसे कोण वेध समझना चाहिए।

एक ही खण्ड में घर की पट्टियाँ ऊँची – नीची हो तो यह तालू वेध होता है। द्वार के उत्तर अंग में मध्यभाग में नीची पट्टी आये तो शिरवेध समझना चाहिए।

घर के मध्य भाग में एक स्तम्भ हो अथवा अग्नि या जल का स्थान हो तो इस घर का हृदय शल्य समझें, इसे स्तम्भ वेध कहते हैं।

घर की निचे की तथा ऊपर की मंजिल न्यून तथा अधिक हो तो तुला वेध समझना चाहिए। परन्तु पत्तियों की संख्या समान हो तो दोष नहीं होता है।

घर के दरवाजे के सामने कोई वृक्ष, कुआँ, स्तम्भ, कोना या कील (खूंटी) हो तो यह द्वारवेध है। परन्तु घर की ऊंचाई से दोगुनी जमीन छोड़कर उपरोक्त कोई भी वेध हो तो यह दोष नहीं होता।

वेध का परिहार आप को इस प्रकार समझना चाहिए कि घर की उन्चैसे दोगुनी और मन्दिर की ऊंचाई से चारगुनी भूमि को छोड़कर इसके वेध आदि का आगे कोई छोड़कर हो तो इसका कोई दोष नही लगता ऐसा विश्वकर्मा का मत है।

वेध का फल आपको इस प्रकार समझना चाहिए - तलवेध से कुष्ट रोग, कोण वेद से उच्चाटन, तालू वेध से भय, स्तम्भ वेध से कुल का विनाश, कपाल वेध से और तुला वेध से धन का नाश और क्लेश होता है। इस प्रकार वेध का फल जानकर शुद्ध घर बनाना चाहिए, और भी विशेष बात यह है कि औरों के घर में जाने का रास्ता अगर आप के द्वार से होकर जाता है तो उसको मार्ग वेध कहते हैं। यह भी विनाश कारक ही होता है, वृक्ष का वेध हो तो शोक प्राप्त होता है। पानी के नाले का वेध हो तो धन का व्यय होता है, कुएं का वेध हो तो वायु रोग होता है। शिव –सूर्य आदि देवतओं का वेध हो तो स्त्री के लिए कष्टदायक होता है। ब्रह्मा के सामने द्वार हो तो कुल का नाश होता है।

एक वेध से कलह दो वेध से घर की हानि, तीन वेध से घर में बहुत का निवास, चार वेध से घर का क्षय और पांच वेध से महामारी प्लेग होता है।

4.3.1 द्वार विचार

वास्तु निर्माण करते समय सभी भागों का अपना –अपना महत्व होता है। अन्य अंगों की भांति दरवाजा या द्वार बनाते समय भी दिशाओं का विचार करना शुभ फल प्राप्ति के लिए आवश्यक है। निर्माण में दरवाजे एवं खिडकियां यदि विधि अनुसार सही दिशा में लगाई जाय तो निश्चित ही व्यक्ति लाभ का भागी बनेगा ।शास्त्रों की माने तो चारों ही दिशाओं में द्वार बनाया जा सकता है किन्तु इसका स्थान निर्धारित करना आवश्यक है।

पूर्व दिशा के द्वार को विजय द्वार, दक्षिण द्वार को यम द्वार, पश्चिम द्वार को मकर द्वार तथा उत्तर द्वार को को कुवेर द्वार कहते हैं। ये सभी नामानुसार फलदायी होता है। इसलिए दक्षिण दिशा में

द्वार कभी नहीं बनाना चाहिए, यदि बनाना हो तो मध्य भाग में नहीं बनावें, पूर्व दिशा के आठ भागों में से तीसरे या चौथे भाग में तथा दक्षिण दिशा में दुसरे या छठवें भाग में द्वार बनाना शुभ प्रद होता है।

पूर्व द्वार – इसे विजय द्वार कहते हैं यह उत्तम माना गया है ,पूर्व द्वार के आठ भागों में से तीसरे एवं चौथे भाग में द्वार बनवाना चाहिए। प्रात: कालीन सूर्य के किरणों से शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शान्ति, लौकिक सुख की प्राप्ति तो होती ही है साथ ही धन –धान्य पुत्रादि की प्राप्ति होती है। एवं तृतीय भाग के द्वार से धन प्राप्ति, चतुर्थ भाग के द्वार से राज सम्मान एवं प्रतिष्ठा की प्राप्ति होती है।

दक्षिण द्वार – इसे यमद्वार कहते हैं, इसे अशुभ माना जाता है, अनायास ही अशुभ घटनाएं जैसे वाहन दुर्घटना, व्यसन, बीमारी, आर्थिक हानि, आदि इसके कारण बनते हैं। इसलिए दक्षिण में मुख्य द्वार नहीं बनावें। यदि द्वार बनाना आवश्यक है तो दुसरे अथवा छठवें भाग में बनाना चाहिए। एक अन्य मतानुसार चतुर्थ पंचम या षष्ठ भाग में दक्षिण द्वार बना सकते हैं। चतुर्थ भाग में पुत्र प्राप्ति ,पंचम में धन प्राप्ति तथा षष्ठ में यश प्राप्ति होती है।

पश्चिम द्वार – इसे मकर द्वार कहते हैं। यह मध्यम फल दायक है। इसके कारण शोक, दुःख स्त्रीरोग, कलुषित मनोवृत्ति होती है। अन्यथा नियमों से धनागम होने पर भी धन स्थिरता को प्राप्त नहीं होता, पश्चिम द्वार बनाना अपरिहार्य हो तो तीसरे या पांचवें भाग में द्वार बनाना उपयुक्त है।अन्यमतानुसार पश्चिम दिशा के आठ भागों में से तीसरे ,चौथे, पांचवें या छठवें भाग में घर बना सकते हैं।तीसरे भाग में दरवाजा बनाने से धनप्राप्ति चतुर्थ भाग में धनागम पंचम भाग में सौभाग्य प्राप्ति तथा छठवें भाग में धन लाभ होता है।

उत्तर द्वार – इस द्वार को कुबेर द्वार कहते हैं, इससे व्यापारी वृत्ति, सत्यभाषण, हितमित वचन, व्यवहार, प्रगति एवं धन वृद्धि होती है। इसके तीसरे या पाचवें भाग में द्वार निर्माण उपयुक्त होता है। अन्य मतानुसार चौथे ,पाचवें या छठवें भाग में द्वार निर्माण करना चाहिए। चतुर्थभाग में द्वार बनाने से सम्पत्ति वृद्धि, पाचवें भाग में द्वार होने से सुख प्राप्ति, तथा छठवें भाग में द्वार होने से राज प्रतिष्ठा, मान –सम्मान की प्राप्ति होती है।

ईशान दिशा में मुख्य प्रवेश द्वार होने से एश्वर्य लाभ, वंश वृद्धि, सुसंस्कारित सन्तान तथा शुभ फल प्राप्ति होती है। आग्नेय दिशा में मुख्य प्रवेश द्वार होने से स्त्री रोग, अग्निभय, आत्मघात, आदि होने की सम्भावना होती है। नैऋत्य दिशा में मुख्य प्रवेश द्वार होने से अकाल मृत्यु, आत्मघात, भूत –प्रेत वाधा, आदि अशुभ घटनाएं होने की सम्भावना होती है।

वायव्य दिशा में मुख्य प्रवेश द्वार होने से घर कोई और ले लेता है, तथा अधिक धन खर्च करने के उपरान्त मानसिक अशान्ति होती है।

वास्तु प्रवेश – वास्तु प्रवेश चार प्रकार के होते हैं। 1. उत्संग प्रवेश 2. हिनवाहु प्रवेश 3. पूर्ण वाहु या अपसव्य प्रवेश 4. प्रत्यक्ष या पृष्ठभंग प्रवेश

1. उत्संग प्रवेश – वास्तु द्वार अर्थात मुख्य प्रवेश द्वार तथा प्रवेश द्वार एक ही दिशा में हो तो उसे उत्संग द्वार कहते कहते हैं। ऐसा द्वार सौभाग्य कारक, सन्तान वृद्धि, धन –धान्य एवं विजय प्रदान करने वाला होता है।

2. हीनवाहु या सव्य प्रवेश –यदि मुख्य प्रवेश द्वार प्रवेश करते समय बायीं ओर हो अर्थात प्रथम प्रवेश के पश्चात वाई ओर जाकर मुख्य द्वार में प्रवेश हो तो उसे हीनवाहू प्रवेश कहते हैं। यह अशुभ माना जाता है, ऐसे घर में निवास करने वाले अल्प धन वाले, अल्प मित्र वाले, दरिद्री स्त्री के अधीन रहने वाले तथा अनेक रोगों से पीड़ित रहते हैं।

3. पूर्णवाहू या अपसव्य प्रवेश – मुख्य घर का द्वार प्रवेश करते समय दाहिने ओर हो अर्थात प्रथम प्रवेश के समय दाहिनी ओर जाकर मुख्य घर में प्रवेश हो तो उसे पूर्णवाहु प्रवेश कहते हैं। ऐसे मकान में रहने वाले पुत्र –पौत्र –धन तथा सुखों को प्राप्त करते हैं।

4. प्रत्यक्ष या पृष्ठभंग प्रवेश – यदि मुख्य घर की दिवार घूमकर घर के मुख्य द्वार में प्रवेश होता हो तो उसे प्रत्यक्ष या पृष्ठभंग प्रवेश कहते हैं। ऐसे घर के निवासी भी सन्तान सुख से वंचित, धन से हीं तथा दरिद्र होते हैं।

द्वार निर्माण करते समय यह भी ध्यान देना चाहिए कि द्वार से घर में जाने के लिए सृष्टिमार्ग अर्थात दक्षिण की ओर से प्रवेश हो, इसी ही सीढियाँ एवं दरवाजे बनाना चाहिए। मुख्य द्वार के बराबर अन्य सभी द्वार बनाना चाहिए अर्थात हर एक द्वार के उतरंग समसुत्र में रखना चाहिए। या मुख्य द्वार में आजे ऐसा सकरा दरवाजा बनाना चाहिए। यदि मुख्य द्वार के एक ओर खिड़की बनाना हो तो उसे इच्छानुसार कर लें। पश्चिम दिशा वाले मुख्य घर में दो द्वार और शाला हो तो ऐसे घर में रहने से परिवार जन को दुःख होता है। जिस घर के द्वार एक कमल वाले यानि एक ही पलड़ा हो या विल्कुल कमल हीन यानि पलड़ा रहित हो तथा द्वार निचे की अपेक्षा उपर की ओर ज्यादा चौड़ा हो तो ऐसा घर धन से हीं होता है।

4.3.2 वास्तु में रंग आयोजना

रंगों का मनुष्य के जीवन पर मानसिक एवं शारीरिक दोनों ही पक्षों पर प्रभाव पड़ता है। किसी रंग के कमरे में बैठने से मं प्रसन्नचित होता है तो किसी रंग के कमरे में अत्यन्त मलिन विचार आते हैं। शात्रों में पांच परमेष्ठी के आध्यात्मिक स्वरूप के अनुरूप रंगों का विवेचन किया गया है। जैन और पांच रंगी ध्वज में इसका विचार रखा जाता है। विभिन्न पूजा –पाठ -जाप आदि कार्य करते समय वस्त्र- माला-पुष्प आदि के रंगों का उल्लेख शास्त्रों में मिलता है। अतएव वास्तु के रंग आयोजना भी एसी होनी चाहिए कि मनोहारी एवं शुभ शान्ति का प्रतीक हो।

वास्तु रंग योजना	परिणाम
आसमानी रंग	शान्ति – उत्साह का प्रतीक
लाल	मध्यम
चाकलेटी	अशुभ एवं विपरीत प्रभाव प्रदान करता है
काला	अशुभ
गुलाबी	शुभ
सफेद	शान्ति ,एवं मानसिक स्थिरता प्राप्ति होती है
नीला हरा चूने में मिलाकर	उत्तम फल दायक है।

इस प्रकार उपरोक्त चक्र के अनुसार विचार करके भवन का ऐसे रंग से कलर करना चाहिए जो शुभ हो तथा लोगों को लिए देखने में आकर्षक लगे एवं शुभ फल प्रदान करने वाला भी हो।

4.3.3 रसोई कक्ष विचार

मित्रों जैसा की आप जानते हैं कि रसोई घर में परिवार के लिए भोजन निर्माण किया जाता है, भोजन सिर्फ उदर पूर्ति हेती न होकर शुद्ध एवं सात्विक होना आवश्यक है, ऐसा भोजन तन तथा मन दोनों को पवित्र बनाता है। प्राचीन समय से लेकर आज तक प्रचलित भाषा में रसोई के घर को चौका कहा जाता है। चौका का अर्थ है चार –चार प्रकार की शुद्धि पूर्वक जो आहार बनाया जाय, वही आहार मुनि आदि संयमी अतिथिओं के लिए योग्य होता है।ऐसे चौके में बना आहार सबके लिए लाभदायक होता है। अतएव निवास में रसोई घर या चौका वास्तुशास्त्र के अनुकूल दिशाओं की अपेक्षा रखकर ही निर्माण कार्य करना चाहिए, रसोई घर का चौका ऐसा होना चाहिए कि वहां से सात्विक जनों को भी भोजन कराने में कोई समस्या न हो तथा उसके धर्म का निर्वहन हो सके।

रसोई घर के लिए सर्व श्रेष्ठ दिशा आग्नेय मानी जाती है। आग्नेय दिशा में अग्नि तत्व माना जाता है, इसलिए अशुभ घटनाओं का अग्नि तत्व निवारण करती है।अग्नि का कार्य जलाना या भस्म करना है ,नियमित रूप से अग्नि या रसोई घर को आग्नेय दिशा में रखने से घर की सभी आपत्तियां भस्म हो जाती है। पृथक रूपेण आग्नेय दिशा में ही निर्मित कक्ष में चूल्हा –सिलिंडर –भोजन के उपकरण आदि आग्नेय दिशा में रखना चाहिए।

विभिन्न दिशाओं में रसोई घर के निर्माण का निम्लिखित फल होता है –

क्रम संख्या	दिशा	फल	विशेष फल
1	ईशान	अशुभ	प्रगति अवरोध
2	आग्नेय	सर्व श्रेष्ठ	सर्व सुख, सम्पदा, समाधान
3	नैऋत्य	अशुभ	चोरी भय
4	वायव्य	अशुभ	धन नाश का भय
5	पूर्व	मध्यम	परेशानियों में वृद्धि
6	पश्चिम	अशुभ	कष्ट, शोक, अशान्ति, नीरस भोजन
7	उत्तर	कलह	कलह –वाद- विवाद अशान्ति
8	दक्षिण	अशुभ	अपयश, मृत्यु भय

रसोई घर बनाते समय स्त्रियों का मुख पूर्व की ओर होना चाहिए। यह आरोग्य वर्धक है, बाहर के द्वार से चूल्हा नहीं दिखना चाहिए ,ऐसा होने पर परिवार को पूर्ण हानि होने की सम्भावना होती है। रसोई घरमे उससे सम्बन्धित सामग्री यन्त्र तथा ग्राइन्डर, मिक्सर ये सभी चीजे वहीं रखना चाहिए, यह सुख समाधान दायक होता है।रसोई घर में निरर्थक वार्तालाप करना अनिष्ट कारक होता है। ऐसे भूखण्ड जिसमें उत्तर एवं पूर्व में सड़क है, उनमें ईशान में पाकशाला (रसोई घर) बनाने से पारिवारिक कलह तथा धनहानि का संताप भोगना पड़ता है। यदि पूर्व एवं दक्षिण में सड़क है तथा आग्नेय में रसोई घर है तो अति उत्तम होता है। यदि भूखण्ड में उत्तर में सड़क

हो तथा मकान में उत्तर में रसोई घर बनाया जाय तो यह अशुभ तथा विपरीत फल दायक है। यदि भूखण्ड के दक्षिण एवं पश्चिम में सड़क हो तथा किसी कारण आग्नेय में रसोई घर बनाना सम्भव न हो तो इसका निर्माण नैऋत्य अथवा वायव्य कमरे के आग्नेय भाग में रसोई घर बनाया जा सकता है। यदि भूखण्ड के दक्षिणी भाग में सड़क हो तो वायव्य में रसोई घर बनाएं तथा कमरे के आग्नेय भाग में रसोई का प्लेटफार्म बनावें। यदि भूखण्ड के उत्तरी एवं पश्चिमी भाग में सड़क हो तथा वायव्य भाग में रसोई घर बनाया जाय तो इसके विलक्षण परिणाम होंगे। अतिथियों की संख्या में वृद्धि होने के कारण घर में रौनक तो रहेगी परन्तु खर्च अधिक होने से गृहीणी के चेहरे पर रौनक कम हो जाता है। इस लिए विचार करके ही रसोई घर का निर्माण आप को करना चाहिए।

4.3.4 पथ एवं प्रवेश द्वार

जिन भूखण्डों के प्रवेश के समक्ष विदिशाओं में पथ हों उनमें प्रवेश द्वार बनाने के लिए विशेष सावधानी रखनी चाहिए। निम्नलिखित सारणी के अनुरूप प्रवेश रखने से विपरीत वास्तु प्रभाओं से सुरक्षा होती है। एवं उत्तम फलों की प्राप्ति होती है।

भूखण्ड से लगी सड़क एवं सड़क की दिशा	मुख्य प्रवेश द्वार	दोष निवारण के लिए अन्य दिशाओं में प्रवेश द्वार करने से दोष दूर होता है
पूर्वी ईशान	पूर्वी आग्नेय	उत्तरी ईशान
पूर्वी आग्नेय	पूर्वी ईशान	-
दक्षिणी आग्नेय	दक्षिणी आग्नेय	उत्तरी ईशान
दक्षिणी नैऋत्य	दक्षिणी आग्नेय	पूर्वी ईशान
पश्चिमी नैऋत्य	पश्चिमी वायव्य	उत्तरी ईशान
पश्चिमी वायव्य	पश्चिमी वायव्य	पूर्वी ईशान
उत्तरी वायव्य	उत्तरी ईशान	-
उत्तरी ईशान	उत्तरी ईशान	पूर्वी ईशान

4.4 सारांश

इस पाठ में वास्तु के विभिन्न आधारभूत सिद्धान्तो के बारे में बताया गया है तथा इसके अनुरूप भवन निर्माण करने से निश्चित ही शुभ फल की प्राप्ति होगी एवं मानव जीवन के लिए कल्याणकारी सिद्ध होगा चूँकि कोई भी नियम बनाने का मूल उद्देश्य भी यही होता है कि उस नियम का परिपालन करने से निश्चित ही समाज को लाभ प्राप्त हो। इसी प्रकार हर व्यवसाय का भी अपना एक आधार होता है उसके अनुसार चलने पर निश्चित ही व्यक्ति समाज में प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है। जैसे – शेयर मार्केटिंग से सम्बन्धित कार्य करने वाले को अपने घर से अथवा आफिस के उत्तर दिशा को विकसित करना चाहिए, चूँकि हर व्यवसाय का अपना एक आधारभूत सिद्धान्त होता है अत: उस दिशा को विकसित करते हैं तो निश्चित ही व्यवसाय में वृद्धि होगी। शेयर मार्केट में व्यवसाय करने वालों को शेयर ट्रेंडिंग का मूल दिशा उत्तर होती है,

इसलिए इस दिशा को विकसित करने से अधिक लाभ होगा। आफिस में नैऋत्य कोण में मुख करके बैठना चाहिए, आफिस के उत्तर दिवार में एक घड़ी लगाना चाहिए एवं घड़ी का रंग हरा होना चाहिए। आफिस के उत्तर दिशा का तत्व जल तत्व होता है इसलिए इसी दिशा में दिवार पर पानी से सम्बन्धित चित्र लगा सकते हैं। साथ ही उत्तर दिशा कुवेर की दिशा भी होती है यहां से धन तथा व्यापर का विचार करना उचित है अत: यहां पर श्रीयन्त्र लगाकर समृद्धि की प्राप्ति कर सकते हैं। चूँकि सभी व्यवसाय लोकप्रियता के कारण चलता है अत: इसके लिए आफिस के दक्षिण दिवार पर लाल रंग का वाल पेपर लगाना चाहिए, ग्राहकों से सम्बन्धित कोना नैऋत्य कोण होता है इस लिए नैऋत्य कोण में लाल रंग का बल्ब जलाए रखें। इन सभी विषयों का मूल आधारभूत सिद्धान्त ही वास्तु शास्त्र के स्तम्भ हैं।अत; इस पाठ में आप को विशेष रूप से बताने को मिलेगा कि किस दिशा का आधारभूतसिद्धान्त क्या है एवं इसका प्रयोग हम कैसे करेंगे मुझे आशा है कि यह पाठ आप सभी को बहुत पसन्द आएगा तथा इसमें वर्णित आधारभूत सिद्धांतो का प्रयोग करके आप सब लोगों को बतायेंगे।

4.5 शब्दावली

तहखाना	=	जमीन के निचे का तलहटी कक्ष
आयाम	=	अधिकतम सीमा, विस्तार
विन्यास	=	जमाकर रखना जैसे – वास्तु विन्यास
एश्वर्य	=	वैभव
खात	=	गड्ढा
वेध	=	अवरोध
द्वार	=	दरवाजा
कल्पित	=	कल्पना
प्रतिहारी	=	द्वारपल
अष्ट मंगला	=	सिंह – बैल – हाथी –कलश –पंखा – वैजयन्ती – ढोल और दीपक इसको अष्ट मंगला कहते हैं।
सवत्सा गौ	=	बछड़े सहित गाय
औषधि	=	दवा, चिकित्सा कक्ष = दवा करने वाला प्रकोष्ठ, नृत्यशाला = नृत्य सीखने वाला प्रकोष्ठ,
गौशाला	=	गाय का निवास स्थान, घुड़साल = घोड़ा निवास स्थान, वीथी = मार्ग, वास्तु पद विन्यास = जिस वास्तु की स्थापना में सम संख्या में पद हों उसे चौसठ पद वाले वास्तु के समान एवं विषम संख्या में पद हो तो उसे 81 पद वाले वास्तु के समान समझना चाहिए।

4.6 उपयोगी पुस्तकें

1. गृहवास्तुप्रदीप, डॉ. (श्री मती) शैलजा पाण्डेय, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
2. वृहद्वास्तुमाला, सम्पादक – डॉ.ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, डॉ. रवि शर्मा, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन
3. वस्तुसारसंग्रह, लेखक – आचर्य श्री कमलाकान्त शुक्ल, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्व विद्यालय वाराणसी
4. भवनभास्कर, लेखक – राजेन्द्र कुमार धवन, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी संवत 2057, गीता प्रकाशन गोरखपुर
5. वास्तुचिन्तामणि, सम्पादक – नरेन्द्र कुमार बड़जात्या, श्री प्रज्ञाश्रमण दिगम्बर जैन संस्कृति न्यास, ज्योति निलय गरुड़ खाम्ब चौक इतवारी नागपुर
6. शिल्पदीपक, सम्पादक – डॉ. श्री कृष्ण जुगनु, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी
7. देव शिल्प (मन्दिर वास्तु एवं स्थापत्य), रचयिता –सिद्धान्त रत्नाकर, सम्पादक – नरेन्द्र कुमार बडजात्या छिंदवाड़ा, वर्ष –सिद्ध क्षेत्र नैनागिरी 15 /07 / 2000
8. जैन वस्तुसार, सम्पादक – प्रो. प्रताप कुमार ज . टोलिया, प्रकाशन वर्ष – 2009, मुद्रक – सी . पी . इनवेशंन किलारी रोड बेंगलौर -53

4.7 बोध प्रश्न

1. वास्तु के आधारभूत सिद्धान्त पर प्रकाश डालिए ?
2. वास्तु स्वरुप विभाग तथा उसके विविध स्वरूपों को दर्शाइए ?
3. इक्यासी पद वाले वास्तु की स्थापना क्रम लिखिए ?
4. वेध के प्रकार को बताइए ?
5. रसोई कक्ष में होने वाले बदलाव को लिखिए ?